मूल्यहीन आकांक्षाऐं और हम

आंचलिक पत्रकारिता बदल रही है क्योंकि समाज और स्थितियां बदल रही हैं। अब साइकिल से या किसी सामान्य से कागज पर लिखकर, बस या डाक से समाचार भेजने को आदर्श नहीं माना जा सकता है। कम्प्यूटर और नई सूचना तकनालाजी से काम करना ही जरूरी है। पत्रकारों के बीच स्पर्धा है। अब वह समय नहीं रहा जब सम्पादक को बराबर वेतन भी नहीं मिलता था। अब तो उसे कहीं-कहीं वडे सहरों में पांच लाख रूपया वेतन भी मिलता है। लोग अब करोड़ रुपये के मकान खरीद रहे हैं और ऐसे ही उनके पास महंगी गाड़ियां हैं। इस बदलाव के साथ हमें अपने आपको समायोजित करना सीखना होगा और इस बदलाव के साथ ही पत्रकारिता करनी होगी। यह समय अब लौटकर नहीं आने वाला है। भूमंडलीकरण का यह बदलाव वैश्विक है और हमें भी इसी के साथ चलना होगा। यह और इसी तरह की अन्य कुछ बातें आंचलिक पत्रकारिता की चुनौतियों पर केन्द्रित एक संगोष्ठी में व्यक्त की गईं। संगोष्ठी सागर के आंचलिक पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ता तथा अध्यापक स्व. भुवन भूषण देवलिया की स्मृति में भोपाल में आयोजित थी।

इस संगोष्ठी में भी दो गलत धारणायें बहस का हिस्सा बनीं। समय बदल गया है। अब वह पुराना समय और उस समय में काम करने के तरीके तथा साधन वापस नहीं आ सकते हैं। गोया, लोग उनको वापस चाहते हैं। ऐसा न तो कभी चाहा गया और न हो सकता है। पर जैसे गांव, अभाव का पर्याय माना जाता है। संभव है, कुछ पत्रकारों के मन में आंचलिक पत्रकारिता का स्वरूप भी उसी तरह के अभाव का बना हुआ है। वे इसीलिए कहते हैं कि अब तो आपको बदलना होगा। उन्हें यह मालूम है या नहीं कि जिस कम्प्यूटर और अन्य साधनों से वे नगरों में पत्रकारिता कर रहे हैं, वे अब तहसील या जिला स्थानों पर ही नहीं, गांवों में भी उपलब्ध होते जा रहे हैं। इसलिए न तो यह चुनौती है और न आकांक्षा कि पचपन या उससे पहले का समय और साधनों की वापसी का मतलब ही आंचलिक क्षेत्रों की पत्रकारिता है। यह भी कहा जाता है कि जैसे नगरीय पत्रकारिता में त्वरा है, आपसी स्पर्धा है और सूचना सम्प्रेषण में साधनों की संगति है, उसे आंचलिक पत्रकारों को भी अपनाना चाहिये। यह सब बदल चुका है। जिले में ब्यूरो हैं और गांव की खबरें अब यदा-कदा ही डाक से आती हैं। आधुनिक सूचना साधनों को अपनाया जा चुका है। अब वे स्पर्धा में ही काम कर रहे हैं और अब उनकी खबरें तीन दिन बाद प्रकाशित नहीं हो रही हैं। फोन, कम्प्यूटर और मोवाइल एस एम एस अब उनके नये साधन हैं। हां पत्रकारिता का कौशल तथा नजरिया नगरीय पत्रकारों की तुलना में

असलों में कमजोर है। इस कमजोरी को दूर करने के प्रयास नहीं हो रहे हैं। इस प्रयास को संस्थायें, विश्वविद्यालय तथा शासन करें।

इन विचारों के बीच एक बड़ी बहस भी छिपी हुई है या यूं भी कह सकते हैं कि भूमंडलीकरण की तरह का एक विचार पत्रकारिता के ध्येय के संदर्भ में रोपित किया जा रहा है। वह विचार है कि जिस तरह से समाज बदल रहा है, उस समाज के साथ हमें अपने को रहना सीखना होगा। अर्थात समाज में जो पूंजी और संसाधनों का बंटवारा हो रहा है उसके साथ हम समायोजित हो जायें। यानी यह कि हम करोड़ों की गाडियां, मकान तथा ऐसे ही अन्य साधनों के लिए या तो स्पर्धा करें या फिर उनको स्वीकार कर लें और उनके बदलाव के बजाय अपने को बदल लें। पत्रकारों के बीच इस विचार को रोपित करने का एक छिपा हुआ आशय यह भी है कि पत्रकारिता ऐसे बदलाव का विरोध करने के बजाय उसके होने को समय का परिवर्तन माने और उसे होने दे।

यह और इस तरह के विचार पहली दफा नहीं व्यक्त किये गये हैं। अन्य स्थानों पर भी ऐसे विचार उन समाचारपत्रों के व्यवस्थापक ही नहीं सम्पादक भी व्यक्त करते रहे हैं। एक सम्पादक ने ऐसी ही संगोष्ठी में यह कहकर तारीफ बटोरी थी कि उसके भी बच्चे हैं जो बड़े 'बी, स्कूल में पढ़ना चाहते हैं, परिवार भी विदेश की सैर करना चाहता है। वे ऐसा क्यों न करें जब पूरा समाज ऐसा चाहता हो। दिल्ली के एक पत्रकार ने भी ऐसा ही कहा था। उनका कहना था कि जब अन्य लोग महंगे, होटलों में वीक एंड मनाते हैं तो क्या पत्रकार ऐसा नहीं कर सकता। ऐसे विचारों के साथ प्राय: भावावेश में पत्रकार जुड़ते हैं। वे सोचते हैं कि यह हमारे ही मन की बात कही जा रही है। इस विवेचन का भी आशय यह नहीं है कि पत्रकार होने का अर्थ सिर्फ अभाव का जीवन है। पर इसे समझना होगा।

पहले समाज के बदलाव को समझें। अब यह साफ हो गया है कि भारत की समग्र पूंजी का अधिकांश यानी 80 फीसदी भाग केवल दस प्रतिशत से कम लोगों के पास है। बीस प्रतिशत पूंजी और संसाधन 80 से 90 प्रतिशत लोगों के पास है। तो समाज के बदलाव का आशय क्या यही है कि हम उन दस प्रतिशत लोगों की आकांक्षाओं और सपनों के साथ अपने को जोड़ लें। प्रशासन और राजनीति के अधिकतर लोग इन आकांक्षाओं के साथ जुड गये हैं और जुड़ते जा रहे हैं। न्याय के लोग भी कमोवेश अब ऐसी आकांक्षाओं को दबा नहीं पा रहे हैं और उनका झुकाव भी उस ओर है। ये तीनों संस्थायें विधिक हैं और सामाजिक नियमन की नियंत्रक भी हैं। इनके साथ ही पत्रकारिता के जुड़ जाने के बाद समाज के उन लोगों के बारे में कौन सोचेगा और कौन उनके लिए आवाज उठायेगा जो बीस प्रतिशत संसाधनों में अपना गुजर-बसर करने के लिए बाध्य होंगे। आज जो स्थिति है, उससे कहीं ज्यादा विकराल स्थिति होगी और उस समाज में जो बिखराव तथा विद्रोह होगा वह अभी

कल्पना से परे ही होगा। इस परिप्रेक्ष्य में हम पत्रकार तय करें कि हम किस तरह के समाज के लिए और किन मूल्यों के लिए काम करें और किस तरह के समाज के साथ अपने को समायोजित करना सीखें।

यह निश्चय तो करना ही होगा कि हम अपनी आकांक्षाओं को मूल्य धारित करें या आकांक्षाओं के लिए मूल्यहीन हो जायें। इस तरह की बहस या विमर्श में सबसे बड़ी गफलत यह होती है कि हम यह मान लेते हैं कि अभाव या साधनहीनता ही आदर्श है। जैसे यही कि क्या पत्रकार को कम वेतन या सुविधाओं में काम करना ही पत्रकारिता का आदर्श हैं। इसे दूसरी तरह से सोचें। सोचें कि राजनीति, प्रशासन, न्याय अपना उत्तरदायित्व ठीक तरह से निभाते तो समाज क्या इस स्थिति में होता जिसमें वह आज है। इन तीनों में भी न्याय के प्रति हमारी भावना ठीक है। हमने यह भी देखा है कि न्यायविदों ने अपने निर्णयों से प्रशासन और राजनीति को एक से अधिक बार अपने गिरेबान में झांकने के लिए बाध्य कर दिया। हमने यह भी देखा के लोक जागरण ने एक से अधिक बार लोगों के चेहरों पर से नकाब उलट दी। तो क्या यह नहीं हो सकता कि पत्रकारिता ठान ले तो स्थिति में बदलाव आ सकता है वैसा जैसा अधिकतर लोग चाहते हैं और जो उनके लिए बेहतर भी है। यदि सब लोगों के पास सुविधायें हों तो हमारे पास भी हों। यदि अधिकतम लोग कम सुविधाओं में हों तो क्या यह उचित होगा कि हम अधिक सुविधा सम्पन्न बनें। इसलिए बात सुविधाओं या असुविधाओं की नहीं है, उसके असमान बंटबारे की है और उसमें हमें किस तरफ खड़े होकर काम करना चाहिये तथा कैसी आकांक्षायें पालना चाहिये यह हमें सोचना होगा। पत्रकारिता यदि निहित स्वार्थ और असमानता की पैरोकार नहीं है तो उसे समानता, समता, न्याय और सर्वहित के लिए खड़ा होना होगा। तब यही मूल्य और ध्येय पत्रकारों का भी होगा।

000